Research Guru
Online Journal of Multidisciplinary Subjects (ISSN : 2349-266X)
Volume-15, Issue-3, December-2021

काव्य भाषा का ऐतिहासिक विकासक्रम

परमार महेन्द्रकुमार फतेसिंह
शोधछात्र हिन्दी विभाग आणंद आर्ट्स कोलेज, आणंद सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर मोः 9537918410

आदिकालीन काव्य-भाषाः-

साहित्य में सत्य एवं कल्पना दोनों का समन्वय रहता है । साथ ही काव्य में सत्य के साथ रचनात्मक कल्पना भी अपना अलग महत्व रखती है । काव्य को शक्ति यहीं से प्राप्त होती है । उसी की अभिव्यक्ति काव्य-भाषा में झलकती है।

काव्य-भाषा के ऐतिहासिक विकासक्रम के अंतर्गत जब हम आदिकालीन काव्य-भाषा पर विचार करते हैं तो अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । इस काल में सभी ग्रंथों में भाषा मिली हुई प्राप्त होती है । यह तथ्य सर्वविदित है कि 'अवहट्ट' हमारी हिंदी भाषा के निकटतम भाषा है । जबकि यह सत्य हैं कि 'अवहट्ट' में हिंदी के बीज दृश्यमान है ।

इस काल में काव्य- भाषा के अध्ययन का प्रमुख आधार 'पृथ्वीराज रासो' है । आचार्य द्विवेदी ने चन्दवरदाई की काव्य-भाषा के बारे में कहा है कि शब्दचयन की अद्भूत शक्ति ने चन्द के काव्य को अप्रितम शोभा प्रदान की है । मधुर छंदों को पढ़ने के बाद रासों के अन्य प्रसंगों की भाषा चन्द की भाषा से अलग हो जाती है । चन्द की शब्द योजना सुंदर है, भाषा में गंभीरता है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने आदिकालीन काव्य-भाषा में प्रयुक्त काव्य रुढ़ियों को भी महत्वपूर्ण माना है । रासो साहित्य में भी प्रेम कथानक रुढ़ियों का खुब प्रयोग हुआ है । सिद्ध साहित्य में सरहपा की निम्नांकित पंक्तियाँ देखें -

"नाद न बिन्दु न रबि न शशि मंडल /
चिअराअ सहावे मूकल /
अजु रे अजु छाँड़ि मा लेहु रे बंक /
निअहि बोहि मा जा हु रे रंक /
अपने अपा बुझतुं निश्रन्मण ।।"[1]

सरहपा की उपर्युक्त पंक्तियों से पता चलता है कि उनकी भाषा तो हिंदी है ही पर उसमें अपभ्रंश का भी प्रभाव है । लूइपा की कविता में भी रहस्यवाद विद्यमान है । आदिकाल में हिंदी के वास्तविक रुप को ढूंढना कठिन है । आचार्य शुक्ल ने सिद्धों की वाणी से हिन्दी साहित्य का प्रारंभ माना है । महाकवि स्वयं भू के काव्य में हिन्दी के छिटपुट प्रयोग मिलते हैं ।

आदिकाल में काव्य भाषा का अध्ययन कठिन है । इसका मुख्य कारण भाषा की विभिन्न धाराएँ हैं । इस युग की काव्यभाषा में अप्रस्तुत विधान के रुप में उपमा अलंकार का प्रयोग मिलता है । खुसरों की पहेलियों में हिंदी के लाक्षणिक परसर्ग मिलते हैं । इस युग में हिंदी भाषा जन- जीवन के रस को लेकर आगे बढ़ी है । अनेक काव्यरुप तथा शैली शिल्प आदिकाल में जन्म लेते अंकित होते हैं । आदिकालीन युग हिन्दी साहित्य के विकास का सोपान है ।

आदिकालीन काव्यों पर अपभ्रंश भाषा का ज्यादा प्रभाव रहा है । इस काल में अपभ्रंश के दो रुपों की चर्चा की गई है । एक शिष्ट जन की अपभ्रंश भाषा जिसका व्याकरण स्वयं हेमचन्द्राचार्य ने लिखा था, दूसरी ग्राम्य अपभ्रंस भाषा जो जबान पर चलती थी । आदिकालीन भाषा में अपभ्रंश एवं अवहट्ट का संक्षिप्त व्याकरणिक रुप विकसित हुआ जो आगे चलकर इन्हीं से व्रजभाषा एवं अवधी विकसित होती है जिससे मध्यकालीन काव्यभाषा का विकास होता है ।

मध्यकालीन काव्य-भाषाः-

मध्यकालीन काव्य-भाषा में दो बोलियों का महत्वपूर्ण स्थान है । जिसमें एक अवधी तथा दूसरी व्रज । जिसके महान कवि तुलसी ओर सूर का विशिष्ट स्थान है । काव्य के प्रमुख तत्वों की विवेचना करते हुए तुलसी ने लिखा हैः-

"आखर अरथ अलंकृति नाना /
छंद प्रबन्ध अनेक विधान /
भावभेद रस भेद अपार /
कवित दोष गुन विविध प्रकार /
धुनि अवरेव कवित गुन जाती /
मीन मनोहर ते बहु भाँती।।"[2]

उपर्युक्त पंक्तियों का अभिप्राय रस, ध्वनि, अलंकार, वक्रोक्ति, गुण और वृत्ति है जिसका सीधा संबंध काव्य-भाषा से है । तुलसी, सूर एवं जायसी भक्ति काल के ऐसे कवि है जिनकी भाषा का अनुकरण उनके समानांतर सभी कवियों ने किया है । इस काल में पूर्वी हिन्दी से अवधी, मैथिली, राजस्थानी से मरुभाषा, पिंगल से व्रजभाषा, खुसरों की भाषा से खड़ी बोली हिन्दवी और नाथ एवं सिद्धों की भाषा से कबीर आदि की सधुक्कडी भाषा का विकास हुआ । राजस्थानी काव्यधारा क्षीण होती गई । 17वीं शताब्दी में वली के दिल्ली आगमन के साथ उत्तर में फारसीनिष्ठ हिन्दी का प्रचार बढ़ा । विषय, कला और भाषा की दृष्टि से खड़ी बोली हिन्दी का रुप हिन्दी से अलग हो गया । इसी का नाम उर्दू पड़ा । अमीर खुसरों की शैली को हिंदुओं ने आगे बढ़ाया । गंगाभाट, प्राणनाथ, जटभल, वृन्दावन जैन, आलम आदि कवियों ने खडी बोली को अपनी रचना का आधार बनाया ।

'भक्तिकाल' के संत कवियों की काव्यभाषा का कोई निश्चित स्वरुप नहीं था क्योंकि सभी संत कवियों की भाषा में अपने अपने प्रांत अनुसार अपनी मातृभाषा का प्रभाव था । इसलिए उनकी भाषा को खिचड़ी-सधुक्कडी कहा गया । अवधी को काव्य भाषा के रुप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय इसी सूफी कवियों को है । जायसी सूफी कवियों में सर्वश्रेष्ठ हैं । तद्भव शब्दों की परंपरा का अनुसरण सूफी संतो ने किया है । मंझन की अवधी भाषा भी सरल और सटीक जान पड़ती है । जायसी की काव्य-भाषा का प्रमाण उनके ग्रंथ 'पद्मावत' के कारण है । इनके इस ग्रंथ में सभी विषयों का विस्तृत वर्णन है । इसकी भाषा ठेठ अवधी है । कबीर की मातृभाषा बनारसी बोली थी परंतु उनके पदों एवं दोहों में खड़ी ठेठ बोली, व्रज, राजस्थानी, पंजाबी भाषा का मिश्रण था । नानक की काव्य भाषा में सरलता, सहजता, संगीतात्मकता और गंभीरता विद्यमान है ।

अवधी काव्य भाषा साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है । जायसी की भाषा में तत्सम, तद्भव शब्दों की अधिकता है । 'पद्मावत' की भाषा जायसी की विशिष्ट विशेषता है । साथ

ही राम भक्ति काव्य की प्रधान भाषा अवधी है । यहाँ राम की प्रतिष्ठा स्थापित करने में संस्कृत शब्दावली का अधिक प्रयोग हुआ है । तुलसी ने 'रामचरितमानस' में अवधी को माध्यम बनाया । उनकी काव्यभाषा में न तो वीर गाथा काव्य की भरमार है न ही संत काव्य का विस्तार । सूर की काव्य भाषा सबसे भिन्न है । उनकी भाषा का दर्शन 'भ्रमर गीत' एवं 'दान लीला' में प्रस्फुटित है । सूर ने कहीं जगहों पर जयदेव और विद्यापति की कोमलकांत पदावली को अपनाया है । सूर की भाषा लोकगीतों की शैली में ढली है । यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि सूर की भाषा वर्ण्य-विषय के अनुसार बदलती गई । इस काल में कृष्ण काव्य दो प्रधान रसों में चित्रित किये गये - वात्सल्य और श्रृंगार । व्रजभाषा के कवियों की रचनाओं में संगीत है । सूरदास की काव्य भाषा विषय-वस्तु और भाव के अनुकूल नये रुपों में दिखाई देती है ।

सूरदास के बाद नंददास व्रजभाषा के अत्यंत महत्वपूर्ण कवि हैं । उनकी भाषा अलंकारयुक्त एवं चमत्कारपूर्ण हैं । उनकी अभिव्यक्ति मनोहारी एवं मधुर है । उन्होंने संस्कृतप्रधान शैली का प्रयोग भी किया है ।

रीतिकालीन काव्य भाषाः-

भक्तिकाल के बाद रीतिकाल के कई कवियों ने व्रजभाषा का सफल प्रयोग किया, जिसमें धनानन्द, बिहारी आदि प्रमुख थे । इस युग के कवियों के दो प्रमुख वर्ग थे, जिसमें देव, बिहारी, भिखारीदास, सेनापति, मतिराम और पद्माकर रीतिबद्ध कवि में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं । दूसरे वर्ग में धनानन्द, ठाकुर बोधा आदि रीतिमुक्त कवियों में अपना स्थान बनाये हुए थे ।

केशवदास व्रजभाषा के पहले कवि थे । इन्होंने भक्तिकाल में ही अलंकारी धारा को प्रवाहित किया था । इनकी भाषा में शब्दकौशल, चमत्कृति एवं वाग्वैचित्र्य विद्यमान है । बिहारी इस काल के प्रमुख कवि है ।बिहारी मुक्तककार है । उनकी भाषा में कल्पनाशक्ति के साथ समास विद्यमान है । बिहारी की रस व्यंजना का पूर्ण वैभव उनके अनुभावों में विद्यमान है । बिहारी की भाषा साहित्यिक है । अप्रस्तुत विधान में संज्ञा शब्दों का महत्वपूर्ण प्रयोग किया है ।

भिखारीदास की भाषा में अवधी, खड़ीबोली, फारसी आदि का मिश्रण विद्यमान है । इनकी भाषा, व्याकरण और सौष्ठव की दृष्टि से परिमार्जित है । पद्माकर का नाम श्रृंगारी कवियों में महत्वपूर्ण है । उनकी भाषा सरस, शुद्ध, परिनिष्ठित एवं सुगठित है । कहीं कहीं सानुप्रासिक शैली की प्रधानता भी विद्यमान है । इनकी भाषा में बिम्ब योजना अत्यंत मनोहारी है । काव्यभाषा के विवेचन में धनानन्द का नाम महत्त्वपूर्ण है । रीति मुक्त धारा के इस कवि ने व्रजभाषा को नया आयाम प्रदान किया है ।

धनानन्द ने काव्यभाषा को ह्रासशील होने से बचाने का प्रयत्न किया है । उन्होंने व्रजभाषा के स्वाभाविक प्रवाह को अपनाया है । ऊनकी रचना में ठेठ भाषा का प्रयोग अधिक है । जिस प्रकार अज्ञेय ने 'आंगन के पार द्वार'में मौन की सार्थकता दिखाई है तथा 'असाध्य वीणा' में उसकी चरम परिणति की है, उसी प्रकार मौन की पुकार धनानन्द के काव्य में विद्यमान है ।

रीतिकाल के बाद आधुनिक काल का उद्भव होता है । भारतेन्दु युग में कविता की

भाषा व्रजभाषा थी । इस युग में हिंदी काव्य की भाषा व्रजभाषा बनी रही । भारतेन्दु युग जिसे हम हिन्दी के आधुनिक युग की संज्ञा देते हैं वह कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है ।

आधुनिक युग की काव्य भाषाः-

भारतेन्दु युगः-

भारतेन्दु हरिशचंद्र 'हरिशचन्द्र मैगजीन' के प्रकाशन के साथ खड़ी बोली का व्यावहारिक रुप लेकर उपस्थित हुए। साहित्य की सभी विधाओं में उन्होंने अपनी लेखनी चलायी । इस काल में पद्य की भाषा तो व्रज भाषा थी पर उन्होंने गद्य में व्रजभाषा मिश्रित खड़ी बोली का प्रारंभ किया । इस युग में शब्द प्रयोग संबंधी अनेकरुपता देखने मिली । इस युग में व्याकरण की अनेक त्रुटियाँ देखने को मिली ।

इस युग में वर्तनीगत अनियमितताओं के उदाहरण देखें- राशी, मूर्ती, वायू,परिनाम, मरजाद, कार्य, सच्च, चान्द, स्मणार्थ, बीरत्व । कभी कभी एक ही लेखक दो प्रकार की वर्तनियों का प्रयोग करता है, जैसेः- जायेगी, जाएगी; छिपाओं, छिपावो; चाहें, चाहें, किरण, किरन; पुण्य, पुन्य; भाँत; भाँति आदि।[3]

इस युग में व्याकरणिक प्रयोग के अंतर्गत अनेक संज्ञाओं का प्रयोग हुआ है, जैसेः- इनका मृत्यु, इक्कीस तोप की सलामी, अनेक उपजाति, अपने बुद्धि से, दोस्मी थी, पाठशाला खुला, राजों के महल, सैना, रंडियों आदि । अनेक सर्वनामों का प्रयोग देखेः-हमैं, उस्को, इन्के, तिस पर आदि । इस युग की काव्य भाषा में क्रिया का प्रयोजन देखेः- सुनना चाहती हैं, तुम माला गूँथने क्या जानों, आवैगा, लीजै, मुझे मारने चाहती है, बादशाह बनाया, मंदिर बनवाये, नाश्ता है, नाश्ता करता है आदि ।

इस काल में व्रज भाषा और खड़ी बोली का मेल है । बाद के काल में राजनीति का मेल स्थापित होता है तथा खड़ी बोली स्वतंत्र रुप में प्रयुक्त होने लगती है ।

द्विवेदी युगः-

इस युग में हिन्दी का परिष्कार होता है । खड़ीबोली हिन्दी का गद्य एवं पद्य में प्रयोग इस युग की सबसे बडी उपलब्धि है । श्रीधर पाठक ने अपनी कविता में खड़ीबोली का श्रीगणेश इस युग में किया । बिंब विधान का प्रयोग अप्रस्तुत विधान के रुप में इस युग में पाया जाता है ।मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी कृतियों में कल्पना के नवीन प्रतीमान दिखाये ।

इस युग में अनेक कवियों ने कुछ अप्रस्तुत विधानों का अनूठा चित्रण अपनी रचनाओं में किया है । इस युग की रचनाओं में बिम्ब-विधान में वर्ण कल्पना, गन्ध कल्पना, नाद कल्पना के प्रयोग भी मिलते हैं । इस युगमें द्विवेदीयुग की तीन विशेषताएँ लक्ष्य करने योग्य है-सौंदर्य दृष्टि का विस्तार, नये अप्रस्तुतों की सृष्टि, आधुनिक काव्यभाषा का निर्माण ।[4]

छायावाद युगः-

छायावाद युग में काव्य भाषा के निर्माण में स्वच्छंद कल्पना का भरपूर उपयोग किया गया, साथ ही बिम्ब विधान की शैली में परिवर्तन किये गये । इस युग के कवियों ने असंख्य नये शब्दों का निर्माण किया । जिसमें जयशंकर प्रसाद ने 'कामायनी' में गोधूली, तिमिंगल, अभिषेक, हिमानी, इन्द्रजाल, यायावर आदि शब्दों का प्रयोग किया ।

सुमित्रानंदन पंत ने 'पल्लव' में मरुताकाश, स्वर्गाभास, सलिल वालिका, अनजान,छायानुवाद आदि शब्दों का निर्माण किया । सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने 'परिमल' में मुद्रित, दिनमान, मंजीर,संकुल, अंजन, प्रत्युष आदि शब्दों का निर्माण किया ।

छायावाद युग से ही साहित्य में आधुनिक नवीन बिम्ब विधान की शैली का आरंभ हुआ । परिणाम स्वरुप छायावादी पदावली को चित्रभाषा कहा गया है । यहाँ कविता में रुप विन्यास की नई प्रणाली का आरंभ होता है । इस युग में अनेक कवियों ने छायावादी विशेषणों का प्रयोग अपनी रनचाओं में किया है । जिसमें सुमित्रानंदन पंत ने 'पल्लव' में स्वप्निल मुस्कान,नीरव घोष, गूढ गर्जन, स्तब्ध ज्योत्सना, कनक छाया,जीवित छाया आदि विशेषणों का प्रयोग किया है । जयशंकर प्रसाद ने 'कामायनी' में पुलकित प्रेमालिंगन, मूर्छिततान, सूरभित भाप, मधुमय अभिशाप, जर्जर अवसाद, शीतल दाह, करुणामय मौन, उज्जवल वरदान आदि विशेषणों का प्रयोग किया है । सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने 'अनामिका' में तरंगित सृष्टि, तान तरल कम्पन,सैकत विहार, शिथिल चुम्बन, अविकच जीवन आदि नवीन विशेषणों का प्रयोग किया है।

छायावाद के बाद प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता का युग आरंभ होता है । प्रगतिवाद के साथ ही साहित्य की मूलभूत धारणा में परिवर्तन आया । प्रगतिवाद, प्रयोगवाद एवं नई कविता में सामान्य शब्दावली को महत्व दिया गया है । इस युग के कवियों ने बिम्ब, प्रतीक, मुहावरें, शब्द, चित्र सब जनजीवन के बीच से लिये है । प्रगतिवाद की दृष्टि से बिम्ब काव्य के रुप पक्ष का ही एक अंग है । प्रगतिवादी बिम्ब विधान वस्तुतः बिम्ब विधान की दृष्टि से पूर्ण नहीं है ।

प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद दोनों छायावादी काव्य की प्रतिक्रिया स्वरुप निर्मित हुए किंतु दोनों का विकास दो दिशाओं में हुआ । प्रगतिवाद का विकास मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की दिशा में हुआ जब कि प्रयोगवाद का फ्रायड और युंग की मनोवैज्ञानिक खोजों की दिशा में । प्रगतिवादी काव्य के द्वारा निम्न मध्यवर्ग की आशा, आकांक्षा, आक्रोश की अभिव्यक्ति हुई तो प्रयोगवादी काव्य में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से स्फुरित भारतीय युवक की अनास्था, संदेह और अनिश्चित मनोदशा की ।

नयी कविता सन् पचास तक पहुँचते-पहुँचते अपने तेवर दिखाने लगी । निर्वैयक्तिकता की दृष्टि नई कविता की विशेषता है । नई कविता के कवियों ने प्रतीकात्मक बिम्ब, शिशु बिम्ब, भाषा वैज्ञानिक बिम्ब आदि का प्रयोग किया है। मुक्तिबोध ने अपनी 'ब्रह्मराक्षस', 'अंधेरे में' तथा 'चाँद का मुँह टेढा है' मैं प्रतीकात्मक बिम्ब, शिशु बिम्ब, भाषा वैज्ञानिक बिम्ब का चित्रण किया है । साथ ही इस युग के कवियों ने अपनी कविताओं में फैंटेसी का भी सटिक चित्रण किया है ।

जहाँ तक काव्य भाषा का प्रश्न है साठोत्तरी कविता में आम आदमी की भाषा को काव्य भाषा के रुप में स्वीकार किया गया है । इस संदर्भ में धूमिल की 'संसद में सडक तक' जनतंत्र की कविता है । ऐसी कविता में बिम्ब की गुंजाइश नहीं रहती । काव्यभाषा संवेदना

का इतिहास है । काव्य भाषा का चिंतन साहित्य के प्रारंभ काल से होता आ रहा है । साठोत्तरी कविताओं के लिए कहा जा सकता हैं कि -

छायावाद के कवि शब्दों को तोड़कर रखते थे /

प्रयोगवाद के कवि शब्दों को टटोलकर रखते थे /

नयी कविता के कवि शब्दों को गोलकर ररखते थे ।

सन साठ के बाद कवि शब्दों को खोलकर रखते हैं ।

उपर्युक्त पंक्तियों में शब्दों के प्रयोग का जो विवेचन है उससे कविता के क्रम विन्यास पर प्रकाश पड़ता है । साहित्य में कविता की भाषा और गद्य की भाषा में उपरी अंतर अन्वय का होता है । गद्य की भाषा में अन्वय का ध्यान रखा जाता है जब कि कविता में लय को महत्व दिया जाता है । छंद के रुप में शास्त्रीय वाक्य विन्यास कविता में सम्बद्ध रहता है । प्रगति-प्रयोगवाद के कवि अपने भावों को अत्यधिक संप्रेषण करने के लिए वाक्य योजना की निर्मिती अपनी इच्छानुसार करने लगे ।

छायावादी कविताओं में सहायक क्रियाओं का लोप दिखाई देता है । इसके विपरीत प्रगति - प्रयोगवादी कवियों ने अपनी काव्य भाषा में सहायक क्रियाओं का प्रयोग किया है । नई कविता के कवियों ने कहीं-कहीं संस्कृत के पूरे वाक्य का प्रयोग किया है।

संदर्भः-

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास-सं.डॉ. नगेन्द्र, पृ.63.
2. रामचरितमानस, बालकांड-तुलसी
3. 'हिन्दी भाषा' में प्रयुक्त- डॉ. हरदेव बाहरी, पृ.54
4. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान - डॉ. केदारनाथ सिंह - पृ. 157.